दैनिक भास्कर

Date: 20-08-26

सोलर एनर्जी में बढ़त के बाद भी कहां पर हो रही है चूक?

संपादकीय

सरकार के अनुसार विगत जुलाई तक देश में सौर ऊर्जा की इंस्टॉल्ड क्षमता 162.15 गीगावॉट पहुंच गई। गैर-जीवाश्म ऊर्जा साधनों में आत्मनिर्भरता के लिए सौर ऊर्जा में भारत की गति असाधारण है। इसका कारण यह है कि पिछले कुछ दशकों में सौर संयंत्र (मॉड्यूल) की लागत लगभग 500 गुना घटी है, जबकि इसे स्टोर करने वाली बैटरी की कीमत 1990 के 9210 डॉलर के मुकाबले 2024 में मात्र 78 डॉलर (125 गुना कम हो गई है। यही कारण है कि सौर ऊर्जा यूनिट बिजली या जल-विद्युत के मुकाबले आधी लागत में लग रही हैं और प्रति यूनिट बिजली भी लगभग आधे खर्च में पैदा हो रही है। फिर क्यों हम कोयला, क्रूड, एथेनॉल का सहारा ले रहे हैं? इसका एकमात्र कारण है मूल्य कम होने के बावजूद जरूरत के मुताबिक बैटरी का उपलब्ध न होना। इसके लिए लीथियम और कई रेयर - अर्थ मटैरियल चाहिए, जिसके लिए चीन का सहारा लेना पड़ता है। सौर ऊर्जा की इंस्टॉल्ड क्षमता का इस समय 18-20% ही उपयोग हो पा रहा है। चूंकि सौर ऊर्जा सूरज की किरणों से मिलती है इसलिए जब संयंत्र ऊर्जा पैदा करता है तब उसकी उतनी जरूरत नहीं होती और जब जरूरत होती है- आमतौर पर शाम से- तब सूरज डूब चुका होता है। जब तक इस ऊर्जा को बैटरी में स्टोरी करने की मुकम्मल व्यवस्था नहीं होगी, सौर ऊर्जा सस्ती होते हुए भी पूर्णतः प्रयोग में नहीं आ सकेगी। 60 वर्षों में पहली बार थर्मल ऊर्जा का उत्पादन आधे से कम हुआ है। क्लीन एनर्जी पर फोकस और बढ़ाना है।

Date: 20-08-26

बहुत सारे नए रोजगार भी क्रिएट करेगा एआई

रघुराम राजन, (आरबीआई के पूर्व गवर्नर)

तो क्या एआई हमारी नौकरियां खाने जा रहा है? अभी तो कोई नहीं जानता कि यह कितनी तेजी से होगा, कितना व्यापक होगा और इसका सबसे अधिक असर किन सेक्टर्स पर पड़ेगा। बहुत कुछ इस पर निर्भर करेगा कि अलग-अलग कंपनियां इस तकनीक को अपने कामकाज में कितनी तेजी से लागू करती हैं।

अमेरिकी जनगणना ब्यूरो के हालिया बिजनेस ट्रेंड्स एंड आउटलुक सर्वे के अनुसार, 20 से कम कर्मचारियों वाली केवल 20% कंपनियां ही वर्तमान में एआई का इस्तेमाल करती हैं, जबकि कम से कम 250 कर्मचारियों वाले 37% बिजनेसों में एआई का इस्तेमाल किया जा रहा है। यानी बड़ी कंपनियां इस तकनीक का अधिक उपयोग कर रही हैं, लेकिन 37% का आंकड़ा भी कम ही है।

फिलहाल, एआई को अपनाने की राह में एक बड़ी बाधा यह है कि पहले से ही असाधारण क्षमताओं वाली इस तकनीक को मौजूदा वर्कफ्लो में इस तरह से कैसे समायोजित करें कि कंपनियां उसका पूरा लाभ उठा सकें। इसके लिए ऐसे मॉडल जरूरी हैं, जो न केवल मौजूदा डेटा पर प्रशिक्षित हों, बल्कि रोजमर्रा के इस्तेमाल से पैदा होने वाले नए डेटा के प्रति एडाप्टिव भी हों।

एआई को अपनाने में बाधा डालने वाला एक अन्य फैक्टर लागतों को लेकर अनिश्चितता है। कई बड़ी कंपनियां अभी भी पायलट प्रोजेक्ट चला रही हैं और नियुक्ति या छंटनी के फैसले टाल रही हैं, क्योंकि वे स्थिति के और स्पष्ट होने का इंतजार कर रही हैं। लेकिन प्रतिस्पर्धात्मक दबाव उन्हें इस तकनीक को अपनाने के लिए मजबूर करेगा ही।

इसके बावजूद, रोजगार के लिहाज से भविष्य पूरी तरह निराशाजनक नहीं है। अगर कंपनियां वही वस्तुएं बनाती और वही सेवाएं उपलब्ध कराती रहती हैं- जो वे अभी करती हैं- तो एआई को अपनाने का प्रभाव वही होगा, जो किसी भी नई तकनीक का होता है। हां, कुछ नौकरियां जरूर गैर-जरूरी हो जाएंगी, लेकिन कुछ अधिक प्रोडक्टिव और दिलचस्प भी होंगी। ऐसा इसलिए, क्योंकि एआई ऊबाऊ और दोहराव वाले कामों को कम करेगा और उन कामों में मदद करेगा, जिन्हें इंसान ज्यादा अच्छी तरह से नहीं कर पाते हैं।

साथ ही, नई नौकरियां भी पैदा होंगी- जैसे एआई इंजीनियरों की, जो इस तकनीक के इंप्लीमेंटेशन की निगरानी करेंगे। इसके अलावा, अगर एआई को अपनाने की वजह प्रोडक्टिविटी में वृद्धि है (यह नहीं कि यह मानव-श्रम की तुलना में सस्ता पड़ता है), तो कंपनियों की कम लागत में अधिक उत्पादन करने की क्षमता उन्हें कीमतें

घटाने और बिक्री बढ़ाने में सक्षम बनाएगी। यह प्रसिद्ध जेवन्स-इफेक्ट है और इससे रोजगार भी बढ़ने चाहिए। आशावादी होने का एक और कारण यह है कि एआई नए बिजनेस खड़े करने में मदद कर सकता है।

मान लीजिए कि कोई व्यक्ति फर्नीचर बनाने का कारोबार शुरू करना चाहता है, लेकिन वह इसलिए हिचकिचाता है क्योंकि इसके लिए उसे एक वेब-प्रोग्रामर और अकाउंटेंट की जरूरत है। अगर एआई ये दोनों भूमिकाएं निभा सके, तो शायद वह काफी कम लागत में एकल स्वामित्व वाला व्यवसाय शुरू कर सकता है। महामारी के दौरान स्टार्टअप की संख्या पहले ही काफी बढ़ गई थी और हाल की तिमाहियों में इसमें और वृद्धि हुई है।

अर्थशास्त्री डेविड ऑटर बताते हैं कि एआई मध्यम कौशल वाले कामगारों को हाई-स्किल्स से लैस कर सकता है। इसका उदाहरण कोई नर्स प्रैक्टिशनर है, जो मेडिकल एआई की मदद से कहीं अधिक बीमारियों की पहचान और इलाज कर सकती है। दुनिया भर में चिकित्सा-सेवाओं की भारी मांग को देखते हुए इस क्षेत्र में नए रोजगार पैदा करने की काफी गुंजाइश है।

यह समझते हुए कि एआई के कारण नौकरियों के संकट का पहला दौर आखिरी नहीं होगा, कंपनियों को समय-समय पर कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने और जहां तक संभव हो, उन्हें नौकरी पर बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित करने की जरूरत होगी। सरकारें कर्मचारियों को दिए जाने वाले अतिरिक्त प्रशिक्षण के लिए टैक्स-क्रेडिट पर विचार कर सकती हैं, जिसमें कर्मचारी के काम पर बने रहने पर हर साल प्रशिक्षण की लागत का एक-तिहाई इस्तेमाल किया जा सके। अगर सरकार ऐसी नीति एआई अपनाने वाली कंपनियों पर लागू करना चाहती है, तो वो यह भी कर सकती है कि इस क्रेडिट का इस्तेमाल केवल टोकन टैक्स की भरपाई के लिए हो।

हालांकि, कर-प्रोत्साहनों से भी अधिक महत्वपूर्ण यह होगा कि कंपनियां स्वीकारें वे अपने कर्मचारियों को अनिश्चित भविष्य से निपटने में मदद करने के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध हैं। जैसे-जैसे रोजगार को लेकर अनिश्चितता बढ़ेगी, सबसे योग्य और प्रतिभाशाली लोग भी ऐसे एम्प्लॉयर के यहां नौकरी स्वीकार करने को लेकर चिंतित हो सकते हैं, जो जब चाहे उन्हें नौकरी से निकाल सकता है। जो एम्प्लॉयर अपने कर्मचारियों को सहयोग देने का वादा करेंगे, उन्हें अंततः एक अतिरिक्त लाभ भी मिल सकता है : उनकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी तो उनके पास चुनने के लिए उच्च गुणवत्ता वाले उम्मीदवारों का एक बड़ा पूल होगा।

Date: 20-08-26

शहरों को "स्मार्ट' बनाना है तो उनके लिए जवाबदेही तय करें

मिन्हाज मर्चेंट, (लेखक, प्रकाशक और सम्पादक)

सरकार ने 2015 में जब 100 स्मार्ट सिटी विकसित करने की योजना घोषित की थी तो उससे जनता की अपेक्षाएं बहुत अधिक थीं। लोग दशकों से जर्जर बुनियादी ढांचे, गड्ढों से भरी सड़कों, ट्रैफिक जाम और भ्रष्टाचार झेलते आ रहे थे। स्मार्ट सिटीज मिशन ने हालात बदलने का वादा किया था। लेकिन अब तक तो ऐसा नहीं हो पाया है।

ये सच है कि एक्सप्रेस-वे, मेट्रो, पुल, सुरंगें और सी-लिंक जैसे इंफ्रास्ट्रक्चर बनाए गए हैं, लेकिन इनमें खामियां भी सामने आ रही हैं। नए पुल ढह जाते हैं, एक्सप्रेस-वे में दरारें पड़ जाती हैं और सुरंगों में पानी भर जाता है। स्मार्ट सिटीज मिशन के तहत इंफ्रास्ट्रक्चर, स्वच्छता, सार्वजनिक सेवाओं में विश्वस्तरीय सुविधाएं देने और समस्याओं पर डिजिटल माध्यम से कार्रवाई के प्रावधान थे।

2020-2021 में कोविड ने इसके कामकाज को बेपटरी कर दिया। 2023-2024 में सरकार का ध्यान चुनावों पर चला गया। 2025 में मिशन की दसवीं वर्षगांठ पर सरकार ने अपना बचाव करते हुए कहा था कि 'शहरों का विकास अब एरिया-बेस्ड डेवलपमेंट (एबीडी) के नजरिए से किया जा रहा है, जिसमें सभी 100 शहरों ने टारगेटेड तरीके से विकास कार्यों के लिए कुछ तयशुदा क्षेत्रों का चयन किया है। जनभागीदारी से चुने गए एबीडी क्षेत्रों को ऐसे मॉडल पर विकसित किया जा रहा है, जिसे शहर के बाकी हिस्सों में भी लागू किया जा सके।

इसके अलावा, हर शहर में पैन-सिटी प्रोजेक्ट भी शामिल किए गए हैं, जिनमें बुनियादी ढांचे और सेवाओं को बेहतर बनाने के लिए तकनीक आधारित समाधान अपनाए जा रहे हैं।' कागज पर यह सब प्रभावी लगता है। धरातल पर कई क्षेत्रों में प्रगति भी दिखती है। मिशन के 100 में से 28 शहरों में पेयजल सप्लाई बेहतर हुई और नल के जरिए जलापूर्ति वाले घरों की संख्या भी 2014 के 17% से बढ़कर 2026 में 80% हो गई। इंदौर जैसे शहर बेहद साफ-सुथरे हैं और मिशन की रैंकिंग में लगातार पहले स्थान पर रहे हैं।

लेकिन दर्जनों शहर ऐसे भी हैं, जहां अब भी खराब आवास-व्यवस्था, बदहाल सड़कें, कूड़ा-करकट और भ्रष्टाचार बड़ी समस्या बना हुआ है। भले ही स्मार्ट सिटीज मिशन भारत की शहरी समस्याओं से निपटने की अच्छी शुरुआत हो, लेकिन असल सुधारों की जरूरत राजनीतिक स्तर पर है। जब तक शहरों और कस्बों को राज्य

सरकारों की निगरानी से आजाद करके उन्हें स्वायत्तता और जवाबदेही नहीं दी जाती, तब तक भारत के शहर बदहाल ही रहेंगे।

मसलन, मुंबई की मेयर के पास नगरीय प्रशासन की कोई शक्तियां नहीं हैं। मेयर का निर्वाचन भी वहां की जनता नहीं करती, बल्कि राज्य में सत्तारूढ़ दल ही उसे चुनते हैं। भारत के सबसे अमीर नगरीय निकाय बृहन्मुंबई महानगरपालिका (बीएमसी) के कमिश्नर नौकरशाह होते हैं। इनमें कई अधिकारी तो बहुत अच्छा काम भी करते हैं, लेकिन उनका कार्यकाल दो साल से भी कम का होता है। तबादला हुआ तो पीछे छूट गई व्यवस्था में स्थायी सुधार करने का उनका प्रोत्साहन भी जाता रहता है।

राजनेताओं, नौकरशाहों और ठेकेदारों की मिलीभगत से ऐसी सड़कें बनाई जाती हैं, जो जल्द खराब हो जाएं। इनमें जानबूझकर घटिया सामग्री का इस्तेमाल किया जाता है, ताकि उन्हें हर साल मरम्मत की जरूरत पड़े। फिर रिश्वतखोरी का खेल चलता है। मुंबई-गोवा और नासिक की सड़कों की हालत इस बात का प्रमाण है कि राजनेता-नौकरशाह-ठेकेदार गठजोड़ ने भारत के बुनियादी ढांचा विकास को कैसे कमजोर किया है।

लंदन और न्यूयॉर्क में मेयर का चुनाव जनता के वोट से होता है। ये मेयर नागरिकों के प्रति जवाबदेह होते हैं। न्यूयॉर्क के मेयर जोहरान ममदानी उन बहुत-से मेयरों में से एक हैं, जिन्होंने न्यूयॉर्क को बदला है। 1970 और 1980 के दशक में न्यूयॉर्क की छवि एक खस्ताहाल शहर की थी। टाइम्स स्क्वायर अपराध और फूहड़पन का अड्डा बन गया था।

इसके बाद रूडी जूलियानी, माइकल ब्लूमबर्ग, बिल डी ब्लासियो और अब ममदानी जैसे मेयरों ने शहर को स्वच्छ बनाया, अपराध कम किया और रिकॉर्ड संख्या में पर्यटकों को आकर्षित किया। जबकि मुंबई में रितु तावड़े निर्वाचित नहीं हुईं, उनका चयन किया गया है। शहर की गड्ढों भरी सड़कों या जर्जर इमारतों के प्रति उनकी सीधी जिम्मेदारी नहीं है। यही वजह है कि मुंबई 100 स्मार्ट शहरों की सूची में निचले पायदान पर है। इस स्थिति को बदलने के लिए भारत के हर शहर में निर्वाचित मेयर होने चाहिए, जो उन्हें वोट देने वाले नागरिकों के प्रति जवाबदेह हों।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 20-08-26

छोटे अनौपचारिक कारोबार पर ध्यान देने की जरूरत

लविश भंडारी , (लेखक सेंटर फॉर सोशल ऍड इकनॉमिक प्रोग्रेस के प्रमुख हैं।)

भारत के डीएनए में मैकाले अलग-अलग तरह से नजर आते हैं। वह केवल भाषा में ही नहीं दिखते बल्कि भारत जिस तरह खुद के लिए 'आधुनिक' दृष्टि की रचना करना चाह रहा है, उसमें भी इसे देखा जा सकता है। औपनिवेशिक भारत में जब ब्रिटिशों ने शहरों को डिजाइन किया तो उनका प्राथमिक लक्ष्य था अपनी छावनियों और प्रशासनिक क्षेत्रों के लिए जगह बनाना। वे भारत की भीड़भाड़ से दूर वहीं पर अपने और अपने परिवारों के लिए व्यवस्थित जगह बना सकते थे। उन्होंने अल्प आय वाले लोगों के लिए बाजारों, छोटी दुकानों या खानपान के ठिकानों का निर्माण नहीं किया। न ही उन्होंने छोटी आर्थिक गतिविधियां तैयार की जो भारत में कारगर साबित होतीं। वैसी जगहें पुराने शहरों या आसपास के इलाकों के लिए छोड़ दी गई। कई बार उन्हें झुग्गियों का नाम दिया गया तो अक्सर उनकी अनदेखी कर दी गई।

बदकिस्मती से जिन्होंने जिम्मेदारी संभाली उन्होंने भी लगभग पूरी तरह पश्चिमी शहरों की छवि में ही शहर बनाने पर ध्यान केंद्रित किया। इसके बाद जो भयावह स्थिति पैदा हुई, उसका कोई दस्तावेज नहीं है; लेकिन शायद ऐसी चीज को दर्ज करने की जरूरत भी नहीं है जो इतनी साफ़ तौर पर दिखाई दे रही हो । भारत की जनसंख्या कई गुना बढ़ी और शहरी जनसंख्या उससे भी अधिक फिर भी कम लागत वाले आवासीय स्थान बहुत कम बनाए गए और इससे भी बुरा यह कि कम आय वाले आर्थिक कार्यों के लिए कोई जगह ही नहीं बनाई गई।

अगर केवल दुकानों पर ध्यान दें तो यह बात चकित करती है कि भारत ने चायवाले, पानवाले, जुसवाले, रेहड़ीवाले, मैकेनिक, सब्जीवाले या फिर साप्ताहिक हाट के लिए कोई जगह नहीं बनाई। इनके लिए शहरी भारत में लगभग कोई स्थान आवंटन नहीं है। लेकिन यह केवल दुकानों तक सीमित नहीं है। कचरा संग्रहण, निर्माण ठेकेदारी, सूक्ष्म स्तर पर वस्त्र निर्माण जैसी गतिविधियों को भी अनदेखा किया गया और आज भी किया जा रहा है। भारतीय शहरों में जहां जगह आवंटित की गई जैसे सब्जी मंडियों आदि में, वहां भी स्थिति बेहद दयनीय है। पूर्ववर्ती योजना आयोग के दस्तावेजों या उन अनेक समितियों को देखें जिनका उद्देश्य नीतियों को दिशा देना था। वहां केवल गरीबों के लिए कम लागत वाले आवास का उल्लेख मिलता है सूक्ष्म आर्थिक गतिविधियों का नहीं। लेकिन ये गतिविधियां अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। शहरी भारत इनके बिना न तो आर्थिक रूप से उत्पादक हो सकता है और न ही सामाजिक रूप से समावेशी इनकी तादाद बहुत अधिक है। शहरी भारत में कार्यरत लगभग 19 करोड़ लोगों में से 80 फीसदी से अधिक अनौपचारिक क्षेत्र में हैं। और यह कहना सुरक्षित होगा कि इनमें से अधिकांश बहुत छोटे कारोबार हैं।

इसीलिए, वैध स्थान की कमी भारत के बड़े शहरी अनौपचारिक क्षेत्र को बनाए रखने वाला एक प्रमुख कारक है क्योंकि हम अपने शहरों में ऐसी गतिविधियों के लिए जगह आवंटित नहीं करते, ये इकाइयां प्रभावी रूप से वैध नहीं होतीं। और चूंकि वे वैध नहीं हैं इसलिए उन्हें अनौपचारिक या असंगठित कहा जाता है और अधिकांशतः अनदेखा कर दिया जाता है।

केवल सरकार की बात नहीं, हम शायद ही कभी देखते हैं कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (सीएसआर) से जुड़ी पहलें इस क्षेत्र पर ध्यान केंद्रित करती हों। स्टार्टअप्स भी इस क्षेत्र की इकाइयों की सेवा को लगभग नजरअंदाज करते हैं। कौशल विकास से जुड़ी पहलें चाहे निजी हों या सार्वजनिक, वे इस खंड को अधिकतम सतही रूप से ही छूती हैं। शैक्षणिक शोधकर्ता, थिंक टैंक और यहां तक कि पीएचडी छात्र भी शायद ही कभी इन पर अध्ययन करते हैं।

इस अज्ञानता और कानूनी मान्यता की कमी ने कई प्रकार के अवांछित परिणामों को जन्म दिया है। पहली बात तो यह कि ऐसी इकाइयां स्थानीय दबंगों और सरकारी कर्मचारियों के लिए नाजुक हो जाती हैं। उदाहरण के लिए 'हफ्ता' शहरी भारत में एक सार्वभौमिक घटना है। यह सांस्कृतिक नहीं बल्कि इस कानूनी अस्पष्टता का परिणाम है। दूसरा, ऐसे व्यवसायों में निवेश की प्रेरणा काफी कम हो जाती है क्योंकि उस स्थान पर स्थायित्व की कोई निश्चितता नहीं होती। तीसरा, औपचारिक रूप लेने की क्षमता लगभग समाप्त हो जाती है क्योंकि योजनाकारों ने भारतीय शहरों में मांग केंद्रों के पास छोटे स्थान नहीं बनाए।

अनौपचारिक क्षेत्र पर होने वाली बहस और नीतिगत प्रवृत्ति अक्सर इसे अधिक औपचारिक बनाने और आर्थिक मुख्यधारा में लाने पर केंद्रित रहती है। लेकिन हमारा तर्क यह है कि रोजगार के लिहाज से यह खंड ही मुख्यधारा है। जिस तरह हम संगठित क्षेत्र के लिए व्यवसाय करने में आसानी पर ध्यान देते हैं उसी तरह यदि हमारे पास अनौपचारिक क्षेत्र के लिए भी समान नीति उद्देश्य हों तो यह अत्यंत सहायक होगा।

यह सही है कि अनौपचारिक क्षेत्र को बढ़ावा देने के खिलाफ कई तर्क दिए जाते हैं। जैसे कि वे श्रम सुरक्षा कानूनों का पालन नहीं करते, कर नहीं देते, या स्वच्छता और कार्यस्थल सुरक्षा जैसे नियमों का पालन नहीं करते। लेकिन इनमें से प्रत्येक तर्क सही नहीं है। पहला, यहां बात यह नहीं है कि ऐसी इकाइयों को बढ़ावा दिया जाए, बल्कि यह है कि उन्हें कानूनी रूप से अस्तित्व में रहने दिया जाए। इसके लिए स्थान आवंटित किया जाए। दूसरा, वे अपने उत्पाद खंडों पर लागू अप्रत्यक्ष करों में योगदान करते हैं और वे इतने छोटे होते हैं कि प्रत्यक्ष कर के दायरे में नहीं आते। तीसरा, सुरक्षा, स्वच्छता और कार्यस्थल नियमों को लागू करना तब आसान होगा जब उनके पास निर्धारित स्थान हो ।

उनके खिलाफ एक और तर्क उनकी कम उत्पादकता, कौशल की कमी और तकनीक के कमजोर उपयोग से जुड़ा है। लेकिन ये तर्क भी त्रुटिपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए, यूपीआई और डिजिटल भुगतान को भारत भर में ऐसी इकाइयों ने पूरे उत्साह से अपनाया है। ये उपयोग में आसान हैं, इनके लिए बहुत कम प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। ये भुगतान को सरल बनाते हैं, तरलता प्रबंधन में मदद करते हैं और चोरी व नकद उगाही के जोखिम को कम करते हैं। मुख्य बात यह है कि यह खंड सकारात्मक समर्थन के प्रति अत्यधिक जवाबदेह हो सकता है। इसके अलावा, लगभग सार्वभौमिक साक्षरता, बड़ी संख्या में शिक्षित लोग डिजिटल अधोसंरचना के प्रसार से सूचना तक बेहतर पहुंच, आर्टिफिशल इंटेलिजेंस समाधानों की वृद्धि और एक गतिशील स्टार्टअप इकोसिस्टम के साथ, ऐसे सूक्ष्म व्यवसायों की उत्पादकता सीढ़ी पर ऊपर चढ़ने की क्षमता अत्यधिक बढ़ गई है।

ऐसे में भारत को क्या करना चाहिए ? इसका उत्तर इस स्वीकार्यता में है कि भारत की अर्थव्यवस्था का समस्त औपचारिकीकरण अभी दशकों दूर है। इसलिए जबकि भारत को व्यवसाय करने में आसानी और निर्माण बढ़ाने जैसे प्रयास जारी रखने की आवश्यकता है, सूक्ष्म व्यवसायों के लिए उनके मांग केंद्रों के पास स्थान उपलब्ध कराना होगा। इसके लिए शहर प्रशासन को प्रमुख बाजारों, आवासीय क्षेत्रों और परिवहन केंद्रों के पास जगह आवंटित करनी होगी। ऐसी पहल के सहायक लाभ देखें तो कम लागत वाले किराए से नगर निगम की आय में सुधार और हफ्ता अर्थव्यवस्था पर चोट इसमें शामिल हो सकता है।

निस्संदेह, भारत की संघीय संरचना के कारण यह प्रशासनिक रूप से बहुत बड़ी मांग है। इसके अलावा, कई स्थानीय राजनेता, राज्य सरकारें और यहां तक कि शहर प्रशासन भी इसका विरोध कर सकते हैं क्योंकि उन्हें इससे बहुत कुछ खोना पड़ेगा। लेकिन केंद्र सरकार एक सक्षम भूमिका निभा सकती है। उदाहरण के लिए वर्तमान में 90 से अधिक शहर प्रशासन सीधे उसके नियंत्रण में हैं। सरकार ने हाल ही में कई नए शहरों के निर्माण की घोषणा भी की है। केंद्र सरकार का समर्थन राज्य और शहर सरकारों को इस शर्त पर दिया जा सकता है कि वे ऐसी गतिविधियों के लिए स्थान आवंटित करें। और भी कई संभावनाएं हैं जिनके लिए अतिरिक्त वित्तीय आवंटन की आवश्यकता नहीं होगी।

केंद्र सरकार ने राज्यों और शहरों में इससे कहीं अधिक कठिन कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू किया है। इसलिए उसे नेतृत्व करना होगा तथा राज्यों के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करने होंगे।

जनसत्ता

Date: 20-08-26

शुचिता के बजाय

संपादकीय

किसी सभी सम्मान में वह उम्मीद की जाती है कि उनके जनप्रतिनिधि में उच्च सार की ईमानदारी बेदाग छवि और सोच होनी चाहिए। एक राजनेता उसे कहा जाता है, जो व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर राष्ट्र और समाज के कल्पना को प्राथमिकता मगर जब कोई गंभीर आरोपों में घिरा हो तो यह जनता की अपेक्षाओं की कसौटी पर कितना खरा उतर पाला, झाका अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है। हाल ही में सर्वोच्च न्यायलय में दाखिल एक इलफनामे में बताया गया कि देश भर में खसरों और विधायकों के खिलाफ चार हजार से अधिक आपराधिक मामले दर्ज हैं। इनमें तीन सौ से ज्यादा सांसद तथा चौदह मुख्यमंत्री भी शामिल है।

ऐसे में यह स्वाभाविक है कि राजनीति में सुचिता के मानदंडों पर क्या सही मायने में अगल हो पा रहा है? साथ ही इस पर भी गंभीरता से विचार करने की जरूरत है कि राजनेताओं के लिए विशेष व्यवस्था के बावजूद उनके खिलाफ मुकदमे के निपटारे में इतना लंबा वक्त लग जाता है।

देश की राजनीति में आपराधिक मामलों का सामना कर रहे नेताओं को लेकर लंबे समय से उठते रहे हैं। इस मुद्दे पर अलग-अलग समय में बहस और चर्चाएं भी होती रही हैं। इसके बावजूद विधायिका में ऐसे जतनकी उपस्थिति बनी हुई हैं, जिनके खिलाफ कई आपराधिक मामले दर्ज हैं। समाल सिर्फ मुकदमे जल्दी निपटाने का नहीं है, बल्कि इसका सीधा संबंध राजनीति में आपराधिक हि के लोगों की मौजूदगी और जवाबदेही से भी है। इसमें दोराय नहीं कि किसी व्यक्ति के खिलाफ आपराधिक मामला लंबित होना और उसका अपराध साबित होना दो अलग-अलग बाते हैं। मुकदमे का सामना करने वाले व्यक्ति को तब तक अपराधी नही ठहराया जा सकता जब तक उसे अदालत से दोषी करार दिया जाए। मगर सवाल यह भी है कि जो समाज अपने नेता को एक आदर्श व्यक्ति के रूप में देखता है, अगर यह गंभीर आरोपों में घिरा हो तो उसे किस तरह देखा जाएगा? क्या इससे ईमानदार राजनीति की शुचिता प्रभावित नहीं होगी? नैका ताना तो यही है कि जब किसी जनप्रतिनिधि पर गंभीर आरोप लगे तो वह विद्यार्थी पर से खुद को अलग कर ले लेकिन आज के समय में ऐसे उदाहरण दुर्लभ हैं।

गौरतलब है कि चुनाव आयोग ने सभी राजनीति दलों की ओर से अपने उम्मीदवारों पर दर्ज आपराधिक मामलों की जानकारी न करने की व्यवस्था लागू की कि मतदाताओं को यह निर्णय करने में आसानी हो कि उन्हें किसे अपना जनप्रतिनिधि चुनना है। मगर इस सब के बावजूद राजनीति में आपराधिक छवि के नेताओं के प्रवेश पर अंकुश नहीं लग पाया है। हमें कहा गया है कि वर्ष 2025 में सांसों और विधायकों के खिलाफ 1,243 आपराधिक मामलों का निपटारा किया गया, जबकि उसी वर्ष 1,050 नए नामले भी दर्ज किए गए। हालांकि सरकार की ओर से सांसदों और विधायकों के खिलाफ आपराधिक मुकदमों के जल्द निपटारे के लिए विशेष अदालतें बनाई गई हैं, लेकिन शीर्ष अदालत को दी गई जानकारी में बताया गया कि वर्ष 2018 से ऐसे लंबित मामलों की संख्या लगभग उसी स्तर पर बनी हुई है। जाहिर है कि सिर्फ विशेष अदालतें बना देने से समस्या खत्म नहीं होगी बल्कि उनके पास ऐसे मामलों की सुनवाई प्राथमिकता के आधार पर करने के लिए पर्याप्त संसाधन होना भी जरूरी है।

Date: 20-08-26

युवा आबादी का बिगड़ता गणित

अनीता सहरावत

जापान विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। करीब सवा बारह करोड़ की आबादी वाला यह देश तेजी से बूढ़ा हो रहा है और वर्तमान में यह दुनिया का सबसे बूढ़ा देश है। यहां जन्म दर लगातार गिर रही है और बूढ़ी आबादी तेजी से बढ़ रही है। आज जापान की लगभग तीस फीसद आबादी पैंसठ वर्ष से ज्यादा उम्र की है, यानी हर दस में से एक जापानी बूढ़ा है।

विश्व की विकसित अर्थव्यवस्थाओं में शुमार और उन्नत स्वास्थ्य चिकित्सा सेवाओं के ढांचे पर खड़े इस देश के पांव बुढ़ापे के कारण लड़खड़ा रहे हैं। जन्म दर लगातार घटने की वजह से कामकाजी युवा आबादी कम हो रही है, परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले लोगों की कमी का संकट पैदा होने लगा है। इस समस्या से निपटने के लिए जापानी सरकार 'ऑटोमेशन' और 'रोबोटिक्स' तकनीक को तेजी से विकसित कर रही है। मगर सामाजिक कल्याण एवं चिकित्सा खर्चों के बढ़ते बोझ और सिमटती आय की वजह से जापान पर कर्ज का भार लगातार बढ़ रहा है।

वहीं, तकरीबन 140 करोड़ की आबादी वाले भारत में इस समय विश्व की सबसे ज्यादा युवा आबादी है, जो कुल जनसंख्या का लगभग पैंसठ फीसद है। नवीनतम आवधिक श्रम बल सर्वेक्षण के मुताबिक, भारत में 15 से 16 फीसद कमाऊ एवं युवा आबादी के पास रोजगार नहीं है। यानी इस समय देश की 36.7 करोड़ युवा आबादी अर्थव्यवस्था में सक्रिय योगदान देने के लिए तैयार है, लेकिन विडंबना यह है कि यहां सबके लिए काम ही नहीं है। इस समय देश में डेढ़ से ढाई करोड़ युवा बेरोजगार हैं और इनमें भी पढ़े-लिखे युवाओं की आबादी ज्यादा है।

सीधे तौर पर कहा जाए, तो वर्तमान में युवा आबादी भी अर्थव्यवस्था में या तो लागत या फिर औसत गुजारे का ही योगदान दे पा रही है। ऐसे में यह सवाल चिंता पैदा करता है कि पच्चीस से तीस साल बाद की तस्वीर क्या होगी? क्योंकि संयुक्त राष्ट्र की 'इंडिया एजिंग रिपोर्ट-2023' के मुताबिक, वर्ष 2022 में साठ वर्ष से अधिक आयु के लोगों की संख्या 14.9 करोड़ थी, जो 2050 तक बढ़कर 34.7 करोड़ तक पहुंचने का अनुमान है। यानी पच्चीस साल बाद पांच में से हर एक भारतीय बूढ़ा होगा। साफ है कि विकसित अर्थव्यवस्था के पायदान पर पहुंचने से पहले ही भारत की गिनती बूढ़े देशों में होने लगेगी।

बच्चे और बूढ़े अर्थव्यवस्था पर निर्भर एक ऐसी आबादी है, जिसका बोझ उठाना सरकार और परिवार दोनों की मजबूरी है। बच्चे भविष्य का निवेश हैं, जिनके आने वाले समय में आय में तब्दील होने की उम्मीद है, जबकि बुजुर्ग आबादी केवल बचत का खर्च है। मगर ऐसा सोचकर बुढ़ापे की निर्भरता को भाग्य के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। भविष्य की तैयारी करके इस चुनौती को गंभीर समस्या बनने से रोका जा सकता है।

केंद्र सरकार बजट का लगभग अठारह फीसद हिस्सा स्वास्थ्य, शिक्षा और समाज कल्याण पर खर्च करती है। इसमें से बुजुर्गों से जुड़ी योजनाओं के हिस्से केवल 0.15-0.20 फीसद रकम ही आती है। सरकारी खजाने से 6,645 करोड़ रुपए वृद्धावस्था पेंशन पर खर्च होते हैं, जो गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों को दिए जाते हैं। यह राशि दिखने में भले ही बड़ी लगती है, लेकिन केंद्र की तरफ से प्रति व्यक्ति बुजुर्ग पेंशन के जरिए 200 से 500 रुपए की मामूली सहायता ही मिल पाती है, जिसमें राज्य अपने बजट का बड़ा हिस्सा जोड़कर

इसे दो हजार से तीन हजार रुपए तक तय करते हैं। मगर मौजूदा हालात में इतनी कम राशि की मासिक पेंशन के भरोसे क्या गुजारा संभव है?

हालांकि सरकारी बजट पर बुजुर्गों की देखरेख एवं कल्याण के लिए स्वास्थ्य सेवाओं, बीमा और बचत योजनाओं का भी दबाव है। भोजन, आश्रय और चिकित्सा की संयुक्त योजनाओं के अलावा शारीरिक सहायता एवं बुजुर्गों के लिए जीवनयापन में सहायक जरूरी सामान भी सरकार वृद्धों को मुफ्त मुहैया कराती है। अलग-अलग योजनाओं पर सालाना हजारों करोड़ रुपए सरकारी खजाने से खर्च होते हैं।

हालांकि अर्थशास्त्री और नीति-विशेषज्ञ इसे खर्च नहीं, बल्कि सामाजिक सुरक्षा का निवेश मानते हैं, जिसमें पैसा घूमकर खर्च या निवेश के रूप में वापस अर्थव्यवस्था में लौट आता है। मगर यह भी सच है कि सरकारी नीतियों के कागजों से जमीन पर उतरने में कई तरह के रोड़े हैं और योजनाओं की इस चमचमाती तस्वीर से अक्सर अपने घरों की दहलीज पर भूखे, अकेले और बीमार बैठे बुजुर्ग गायब रहते हैं। सरकारी मदद की या तो उन्हें जानकारी ही नहीं होती या फिर इस तक पहुंचना उनके लिए संभव नहीं हो पाता।

एक और दिलचस्प बात यह है कि देश का मध्यम वर्ग अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, जो सबसे ज्यादा कर का बोझ उठाता है। वेतनभोगी और व्यापारिक मध्य वर्ग अपनी कुल आय का लगभग बीस से 45 फीसद विभिन्न तरह के कर के रूप में चुकाता है। इसके बावजूद इस वर्ग को सीधे तौर पर सरकार की तरफ से सामाजिक सुरक्षा या निश्चित बुढ़ापा पेंशन नहीं मिलती। चूंकि यह वर्ग सरकारी मानदंडों में मजबूर, गरीब और निचले तबके में नहीं आता, तो इसे सरकार की कल्याणकारी योजनाओं का भी सहारा नहीं मिलता। यानी इसे अपने वर्तमान और भविष्य की चिंता खुद ही करनी होती है।

अब सवाल यह है कि इस असुरक्षा का दबाव क्या आने वाले वर्षों में अर्थव्यवस्था पर नहीं पड़ेगा? यह भी एक बड़ी समस्या है कि देश में प्रजनन दर बहुत तेजी से गिर रही है, क्योंकि कामकाजी होती युवा पीढ़ी में बच्चे पैदा न करने या सिर्फ एक बच्चे तक ही सीमित रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक, इस समय देश में कुल प्रजनन दर 1.9 फीसद है, जोकि जनसंख्या के स्थिर संतुलन के आंकड़े 2.1 फीसद से काफी कम है।

प्रजनन दर में गिरावट की शुरुआत वर्ष 1970 के मध्य से ही शुरू हो गई थी, इसमें सबसे ज्यादा तेजी 1990 से 2000 के बीच दर्ज की गई। जो प्रजनन दर वर्ष 1991 में 3.6 फीसद थी, वह 2001 आते-आते 3.1 फीसद रह गई। वर्ष 2001 से लेकर अब तक प्रजनन दर में तेज गिरावट दर्ज की गई है। इस समय देश में प्रजनन दर इतिहास के सबसे न्यूनतम स्तर पर है। यानी वर्ष 1970 में औसतन एक महिला के पांच से अधिक बच्चे होते थे, मगर वर्तमान में यह औसत दो बच्चों से भी कम रह गई है। जबकि आजादी के समय प्रजनन दर अपने उच्चतम स्तर 6.18 फीसद पर थी।

दिल्ली, केरल, तमिलनाडु जैसे राज्यों में जन्म दर विकसित देशों जितनी कम हो चुकी है। इससे आने वाले समय में मानव कार्यबल में भारी कमी और क्षेत्रीय असमानता का खतरा पैदा होगा। देश में सरकारी योजनाओं का आधार बनने वाली नई जनगणना कई मायनों में खास होगी, जो भविष्य की रूपरेखा तैयार करेगी। इस बीच बचपन और बुढ़ापे का बिगड़ता आंकड़ा चर्चा नहीं, बल्कि संतुलन की जरूरत बता रहा है। अगर इस चुनौती पर अभी से काम शुरू नहीं किया गया, तो भविष्य के युवा कंधे इसका बोझ नहीं उठा पाएंगे

Live हिन्दुस्तान.com

Date: 20-08-26

प्रदर्शनों का पैगाम

संपादकीय

शासन-प्रशासन की छोटी-बड़ी कमियों के विरोध में देश भर में विरोध- प्रदर्शन का माहौल बना चिंता की बात है नहीं पर आंदोलन से प्रेरित प्रदर्शनों की बाद आई हुई है। स्वाभाविक है, छात्रों की नाराजगी को भुनाने में राजनीति भी पीछे नहीं रह सक बुधवार को देश में सबसे बड़ा सरकार विरोधी प्रदर्शन पटना में हुआ है, जिसका नेतृत्व बिहार विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष और राजद नेता जीव बाद राजद सड़क पर ऐसे मार्च के लिए उतरी है, तो इससे बिहार की राजनीति गरमा गई है। इस प्रदर्शन के पीछे प्रमुख मुरा है, बिहार के सिवान में छात्र आंदोलन के दौरान एके-47 राइफल का इस्तेमाल सनद रहे, खुद बिहार सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय को बताया है कि भीड़ में फंसने के बाद एक पुलिस कांस्टेबल ने एके-47 से हवा में चार कोई घायल नहीं हुआ। कांस्टेबल को निलंबित कर दिया गया, पर अब मांग है कि एके-47 चलाने का आदेश देने वालों को किया जाए। अब प्रशासन के लिए बेहतर यही होगा कि यह शिकायतों को दूर करने की दिशा में तेज कदमों से बड़े ताकि आंदोलन की जरूरत न रहे।

पटना में हुए राजनीतिक प्रदर्शन से अलग जिस तरह के प्रदर्शन देश के अनेक स्कूलों में हुए हैं, उनकी ओर भी सबका ध्यान जा रहा है। उत्तर प्रदेश के उन्नाव में एक सरकारी आवासीय विद्यालय के सैकड़ों छात्रों ने बुधवार को कथित तौर पर खराब गुणवत्ता वाले भोजन, अपर्याप्त पेयजल, शिक्षकों की कमी और प्रधानाचार्य के व्यवहार के विरोध में प्रदर्शन किया। वैसे, हाल के हफ्तों में फतेहपुर, हमीरपुर और कन्नौज सहित कई जिलों में ऐसे प्रदर्शन हुए हैं, जिन पर जिम्मेदार प्रशासन को तत्काल ध्यान देना चाहिए। छात्रों की तकलीफों को पूरी संवेदना से समझने की जरूरत है। सराहना करनी चाहिए कि उन्नाव में जिला मजिस्ट्रेट व पुलिस अधीक्षक ने विद्यालय पहुंचकर छात्रों को समझाया और उनके साथ नाश्ता किया। छात्रों को आश्वस्त किया गया, तब विरोध-प्रदर्शन समाप्त हुआ। वैसे, भारत के ज्यादातर विद्यालयों में

ऐसी कमियां पाई जाती हैं, जिनका समाधान स्थानीय स्तर पर आसानी से किया जा सकता है। अनेक राज्यों में हो रहे ऐसे प्रदर्शन संकेत है कि शिक्षकों और शिक्षा प्रशासकों को ज्यादा सक्रिय होना पड़ेगा। अनेक सरकारी ही नहीं, निजी विद्यालयों में भी कमियों को दूर करने में दशकों से कोताही बरती जा रही है। आवाज उठाने वाले छात्रों और उनके अभिभावकों को हाशिये पर किया जाता रहा है। निस्संदेह, गलतियां छिपाकर दिखावटी अनुशासन रखने का समय लद जाना चाहिए। मोबाइल व सोशल मीडिया के दौर की नई पीढ़ी को हाशिये पर नहीं धकेला जा सकता।

ऐसे समय में, यह हास्यास्पद है कि तमिलनाडु की सरकार ने छात्रों और युवाओं को विरोध-प्रदर्शनों में शामिल होने से रोकने के लिए कार्रवाई का आदेश जारी कर दिया था। जाहिर है, जब खूब विरोध हुआ, तब आदेश वापस लेना पड़ा । त्रासद तथ्य है कि जिस कॉलेज शिक्षा विभाग को छात्रों को रोकने का काम दिया जा रहा था, उसका प्रभार स्वयं मुख्यमंत्री सी जोसेफ विजय के पास है, जिन्हें युवाओं का नेता माना जाता है। यहां यह समझ लेने की जरूरत है कि बीतने लगी हैं ऐसी पीढ़ियां, जो कमियों के साथ, लाठी व गोलियां भी झेल लेती थीं। अब नई पीढ़ियां वीडियो बनाकर तमाशा खड़ा कर देती हैं, तो एक ही उपाय है, संवाद व समीक्षा करते हुए समाधान की ओर बढ़ा जाए।